Vol III Issue IX March 2014

Impact Factor : 1. 9508(UIF)

ISSN No :2231-5063

International Multidisciplinary Research Journal

Golden Research Thoughts

Chief Editor
Dr.Tukaram Narayan Shinde

Publisher
Mrs.Laxmi Ashok Yakkaldevi

Associate Editor
Dr.Rajani Dalvi

Honorary
Mr.Ashok Yakkaldevi

IMPACT FACTOR : 1. 9508(UIF)

Welcome to GRT

RNI MAHMUL/2011/38595 **ISSN No.2231-5063**

Golden Research Thoughts Journal is a multidisciplinary research journal, published monthly in English, Hindi & Marathi Language. All research papers submitted to the journal will be double - blind peer reviewed referred by members of the editorial board.Readers will include investigator in universities, research institutes government and industry with research interest in the general subjects.

International Advisory Board

Flávio de São Pedro Filho
Federal University of Rondonia, Brazil

Kamani Perera
Regional Center For Strategic Studies, Sri Lanka

Janaki Sinnasamy
Librarian, University of Malaya

Romona Mihaila
Spiru Haret University, Romania

Delia Serbescu
Spiru Haret University, Bucharest, Romania

Anurag Misra
DBS College, Kanpur

Titus PopPhD, Partium Christian University, Oradea,Romania

Mohammad Hailat
Dept. of Mathematical Sciences, University of South Carolina Aiken

Abdullah Sabbagh
Engineering Studies, Sydney

Catalina Neculai
University of Coventry, UK

Ecaterina Patrascu
Spiru Haret University, Bucharest

Loredana Bosca
Spiru Haret University, Romania

Fabricio Moraes de Almeida
Federal University of Rondonia, Brazil

George - Calin SERITAN
Faculty of Philosophy and Socio-Political Sciences Al. I. Cuza University, Iasi

Hasan Baktir
English Language and Literature Department, Kayseri

Ghayoor Abbas Chotana
Dept of Chemistry, Lahore University of Management Sciences[PK]

Anna Maria Constantinovici
AL. I. Cuza University, Romania

Horia Patrascu
Spiru Haret University, Bucharest,Romania

Ilie Pintea,
Spiru Haret University, Romania

Xiaohua Yang
PhD, USA

.....More

Editorial Board

Pratap Vyamktrao Naikwade
ASP College Devrukh,Ratnagiri,MS India

R. R. Patil
Head Geology Department Solapur University,Solapur

Rama Bhosale
Prin. and Jt. Director Higher Education, Panvel

Salve R. N.
Department of Sociology, Shivaji University,Kolhapur

Govind P. Shinde
Bharati Vidyapeeth School of Distance Education Center, Navi Mumbai

Chakane Sanjay Dnyaneshwar
Arts, Science & Commerce College, Indapur, Pune

Awadhesh Kumar Shirotriya
Secretary,Play India Play,Meerut(U.P.)

Iresh Swami
Ex - VC. Solapur University, Solapur

N.S. Dhaygude
Ex. Prin. Dayanand College, Solapur

Narendra Kadu
Jt. Director Higher Education, Pune

K. M. Bhandarkar
Praful Patel College of Education, Gondia

Sonal Singh
Vikram University, Ujjain

G. P. Patankar
S. D. M. Degree College, Honavar, Karnataka

Maj. S. Bakhtiar Choudhary
Director,Hyderabad AP India.

S.Parvathi Devi
Ph.D.-University of Allahabad

Sonal Singh,
Vikram University, Ujjain

Rajendra Shendge
Director, B.C.U.D. Solapur University, Solapur

R. R. Yalikar
Director Managment Institute, Solapur

Umesh Rajderkar
Head Humanities & Social Science YCMOU,Nashik

S. R. Pandya
Head Education Dept. Mumbai University, Mumbai

Alka Darshan Shrivastava
Shaskiya Snatkottar Mahavidyalaya, Dhar

Rahul Shriram Sudke
Devi Ahilya Vishwavidyalaya, Indore

S.KANNAN
Annamalai University,TN

Satish Kumar Kalhotra
Maulana Azad National Urdu University

Address:-Ashok Yakkaldevi 258/34, Raviwar Peth, Solapur - 413 005 Maharashtra, India
Cell : 9595 359 435, Ph No: 02172372010 Email: ayisrj@yahoo.in Website: www.aygrt.isrj.net

Golden Research Thoughts
ISSN 2231-5063
Impact Factor : 2.2052(UIF)
Volume-3 | Issue-9 | March-2014
Available online at www.aygrt.isrj.net

GRT

सामंतवाद : कुछ प्रश्न

नीरू

दयाल सिंह सांध्य कॉलेज, दिल्ली सिरसपुर, दिल्ली

सारांश :-सामंतवादी व्यवस्था का आर्थिक ढांचा ही श्रमजीवी वर्ग के शोषण पर आधरित था। किसानों की दयनीय स्थिति की ओर इशारा करते हुए डॉ. कमला गुप्ता कहती है कि ''भूमि के अनुदान भोगियों के हाथों में चले जाने से किसानों के भूमि विषयक अधिकार तो छिन ही गये साथ ही उन्हें उपसामंतीकरण के द्वारा पट्टे के चलन का शिकार भी बनना पड़ा। उपसामंतीकरण की प्रथा के अंतर्गत भूमि का स्वामी अपनी इच्छा से किसी अन्य को भूमि दे सकता था। साथ ही उन पर काम करने वाले कृषकों को भी हस्तांतरित कर देता था। इस प्रकार नये–नये स्वामियों की अधिनता कृषकों के लिए शोषण के नये क्षेत्रा प्रस्तुत करती थी। ग्रहीता कृषकों पर अपना पूर्ण अधिकार समझता था एवं इच्छानुसार उन्हें सेवा से मुक्त करके निराश्रय कर सकता था।''[1] इससे यह निश्चय हो जाता है कि सामंतवाद में कृषकों की अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्राता का कोई मूल्य नहीं था। वे केवल अपने प्रभुओं के हाथ की कठपुतली बन कर रह गए थे।

प्रस्तावना :

प्रो. इरपफान हबीब किसानों की इस दुर्दशा का आधर जातिव्यवस्था को मानते हुए कहते हैं कि ''कृषक वर्ग के अन्तर्गत आर्थिक विभेदन (डिपरेशिएशन) अंशतः अतीत से उत्तराधिकार में मिला था और जातिव्यवस्था के कारण वह मजबूत हुआ था। परन्तु राजस्व की मांग के बढ़े हुए दबाव ने कृषक वर्ग के कुछ अधिक कमजोर या अधिक भेद तबकों को अन्यों की अपेक्षा दरिद्र बनाकर इस आर्थिक विभेदन में और भी अधिक वृद्धि कर ही होगी।''[2] वह इस स्थिति को और अधिक स्पष्ट करते हुए आगे कहते है –''एक छोर पर मुखिए और बड़े किसान बाकी लोगों पर हावी रहते थे, दूसरे छोर पर छोटे किसान' (राजारिआया) थे जिनके बारे में कहा गया है कि वे खेती संबंधी खर्चों के कारण और बीज तथा मवेशी की व्यवस्था के लिए लिये गये कर्ज में डूबे रहते थे।[3] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सामंतवादी में दो मुख्य वर्ग थे तथा उच्च वर्ग निम्न वर्ग पर हावी रहता था। साथ ही वह भी कि सामान्य कृषक वर्ग की दशा बहुत खराब थी। उनका आर्थिक शोषण किया जाता था। रोमिला थापर इस विस्पफोटक स्थिति के कारणों की खोज करती हुई लिखती है कि उपसामंतीकरण की प्रक्रिया के कारण भूमि से प्राप्त होने वाली आय अनेक छोटे–छोटे टुकड़ों में बिखर जाती थी। इससे दोनो छोरों पर स्थिति राजा और कृषक दोनों की स्थिति दुर्बल हो गयी तथा बिचौलियों के हाथों में अनजाने लगी। स्थिति यहां तक जा पहुंची कि बिचौलियों की संख्या में वृद्धि होने लगी। इससे कृषकों को भूमि–कर के अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के कर भी देने पड़ते थे।[4] करों का विवरण डॉ. कमला गुप्ता के इन शब्दों में देखा जा सकता है – ''करों के बोझ से दबे किसानों की स्थिति दिन–पर–दिन बिगड़ती जा रही थी। किसानों पर लगाये जाने वाले विभिन्न करों में – उदरंग, उपरिकर, भूतवात प्रत्याय, धन्य, हिरण्य, दण्ड दशापराध और उत्पध्मान दिष्टि मुख्य थे। गांवों के कृषकों को ये सभी कर देने पड़ते थे।[5] इस सबका परिणाम यह हुआ कि एक वर्ग और उफंचा उठ गया तथा दूसरा वर्ग और नीचे गिर गया जिसे रोमिला थापर अपने शब्दों में व्यक्त करती है – ''करों की अदायगी से ही बिचौलियें सामंतों की शक्ति बढ़ती रही और उन्होंने गांव के चरागाहों आदि पर अधिकार करना आरंभ कर दिया जिससे किसानों की स्थिति और अधिक निराशाजनक बन गई।[6] यह कहना उचित होगा कि किसानों की अवदशा का मुख्य कारण उन पर लगाये गए तरह–तरह के करों का बोझ थाजिससे वे कभी नहीं उभर सके।

सामंतवाद में शोषण पर आधरित व्यवस्था में उत्पादन के साध्नों में कृषक एक महत्वपूर्ण इकाई थी जिसका मन माना शोषण किया जाता था। कृषकों की दयनीय स्थिति के विषय में बहुत से विद्वानों ने अपना मत व्यक्त किया है। प्रो. रामशरण शर्मा ने इस विषय में लिखा है कि अनुदत्त क्षेत्रों में किसानों को घाटा इससे भी हुआ कि ग्रामवासियों के सामुदायिक अधिकार अनुदान भोगियों के हाथों सौंप दिये जाने लगे।.. .... एक बार जब जमीन अनुदान भोगी के हाथों चली जाती थी तो उस पर उसका व्यक्तिगत अधिकार हो जाता था और ग्रामवासियों के परम्परागत अधिकार उनसे छिन जाते थे, जिससे किसानों की बहुत सी विधओं और अधिकारों का अंत हो गया।''[7]

शर्मा कहते हैं कि 'बिहार और बंगाल में 'सर्वपीड़ा' को झेलना किसानों की सामन्य नियति थी। जब राज्य कोई क्षेत्रा अनुदान में दे देता था तो अपना यह अधिकार भी छोड़ देता था, जो स्वभावतः ग्रहीता के हाथों चला जाता था। शासक सरदार तो ग्रामवासियों से यदा–कदा ही बेगार लेते थे, किन्तु ग्रहीताओं के साथ ऐसी बात नहीं थी। गांव की जमीन तथा अन्य प्राकृतिक साध्नों से अधिक से अधिक लाभ उठाना

उनका उद्देश्य होता था, और इसलिए वे लोगों से बेगार भी कसकर लेते थे।''[8] संभवतः बेगार लेना राजस्व का एक अतिरिक्त साध्न था। वात्स्यायन के कामसूत्रा में हमें सांमतों द्वारा कृषकों एवं उनकी पत्नियों से अपनी व्यक्तिगत सुख–सुविधओं के लिए बेगार कराने के प्रमाण मिलते हैं – ''किसानों की पत्नियों को अपने मालिकों के खेत में निःशुल्क काम करना पड़ता था, जैसे ग्राम प्रधन की कोठी में अन्न रखना, उनके घर में समान लाना और ले जाना, उनके घर की सपफाई और सजावट तथा उनके कपड़ों के लिए रुई, उफन, पटुए या धन से सूत कातना आदि।''[9]

सामंतवादी व्यवस्था में किसानों की अवदशा का दूसरा कारण बेगार प्रथा थी। बेगार से तात्पर्य ऐसे शरीरिक श्रम से है जो उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग के लोगों से लिया जाता है तथा जिसका मूल्य नहीं दिया जाता। यह प्रथा सामंतवाद की विशिष्ट देन है। इस प्रथा के अंतर्गत किसानों एवं श्रमिकों से निःशुल्क काम लिया जाता था।[10] इसके प्रमाण बिहार और बंगाल में देते हुए प्रो. रामशरण शर्मा कहते हैं कि सामंत कुछ दास अवश्य रखते थे।[11] स्त्रियों की सेवा के लिए विशिष्ट प्रकार के दास दासियां होती थी और यहां तक कि दहेज में दासियां भी दी जाती थी। ''हरम की स्त्रियों की देख–रेख के लिए विशेष वर्ग के दास रखे जाते थे। ये बहुध बाल्यावस्था में ही क्रय कर लिये जाते थे और नपुंसक बना दिये जाते थे।[12] इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सामंतवाद में दासों के विभिन्न वर्ग मौजूद थे। अलग–अलग स्थानों के लिए विभिन्न दास वर्ग थें अतः दास प्रथा सामंतवाद की एक मुख्य समस्या थी जिसमें व्यक्ति के साथ पशु से भी बढ़कर दुर्व्यवहार किया जाता था और यह दास व्यवस्था मध्यकाल में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच चुकी थी।

सामतंवाद की सीमाओं में अन्य कई बिन्दु भी रहे है जिनमें दास प्रथा के समान ही जाति व्यवस्था का जन्म हुआ। दूसरे शब्दों में समाज में दो मुख्य वर्ग थे – एक कुलीन अर्थात उच्च ;सामंतद्ध वर्ग तथा दूसरा शूद्र अथवा निम्न वर्ग। उच्च वर्ग निम्न वर्ग को घृणा की दृष्टि से देखता था उसे नीचा समझता था। यहां सामंती व्यवस्था में व्याप्त सुदृढ़ वर्ण व्यवस्था को प्रश्रय मिला। जाति व्यवस्था के प्रादुर्भाव के कारण अस्पृश्यता को स्थान मिला। दूसरे शब्दों में जाति–प्रथा का उद्भव मध्ययुगीन सामंती समाज के एक अभिन्न अंग के रूप में हुआ। दास प्रथा में केवल वर्ण थे, जातियां नहीं किन्तु सामंतवाद में ब्राह्मणों का वर्ण ही एक जाति के रुप में जारी रहा। अन्य वर्ग विशिष्ट वर्ण–समुदायों के रूप में अपना आर्थिक महत्व बहुत कुछ खो चुके थे। बदले में, ग्राम समुदाय के अंदर कितनी ही जातियां और उपजातियां पैदा हो गयी जिनमें से प्रत्येक किसी धंधे या व्यवसाय का प्रतिनिध्त्वि करती थी।''[13]

सामंतवाद के विभिन्न व्यवसायों को अपनाने वाले कबीले भी जातियों के रूप में पक्के हो गए। इस प्रकार सामंती समाज असंख्य जातियों और उपजातियों की एक कल्पनातित भूल–भूलैया बन गया। प्रत्येक जाति अथवा उपजाति के लिए निर्धरित नियमों का उल्लंघन करने पर उस जाति अथवा उपजाति से बहिष्कार कर दिया जाता था। यह सबसे बड़ी सजा मानी जाती थी तथा अपरिवर्तनीय सामाजिक श्रम–विभाजन के आधर पर प्रत्येक जाति इस ढंग से आनी निश्चित भूमिका अदा करती थी कि मूल उत्पादन करने वाले लोगों में श्रम का शोषण उफंची जातियों के लोगों द्वारा किया जा सके। प्राचीन वर्ण व्यवस्था में, अस्पृश्यता नहीं थी, किन्तु जाति प्रथा के आविर्भाव के साथ ही वह भी पनपने लगी। सामंती 'भद्रजन' शारीरिक श्रम को नीच काम समझते थे और उन जातियों को जो अपनी मेहनत मशक्कत से ही गुजर करती थी, अपने से हीन और अस्पृश्य मानते थे।[14]

तत्कालीन लोगों के मन में यह विश्वास बिठा दिया था कि जातियां तो उफपर से ही बनकर आयी है। अर्थात् जो जिस कार्य को कर रहा है, उसकी वही जाति है। तभी तो श्रमिक कार्य करने वाले को अछूत माना जाता था। शुद्रों की स्थिति तो असहनीय थी। ''जैसे – जैसे सामंती व्यवस्था दृढ़ होती गयी, वैसे–वैसे शुद्रों को भी अधिकाधिक पतित समझा जाने लगा। वस्तुतः शूद्र भारत की सामंती व्यवस्था की उपज थे। शूद्रों पर 'उच्च' वर्णों के सामूहिक नियंत्राण के साथ राज्य सत्ता का नियंत्राण भी था। वर्णगत विशेषाधिकार और अध्किारहीनता सामंती दण्ड विधन का मुख्य आधर था।''[15]

यहां यह कहना उचित ही है कि शूद्रों की दयनीय स्थिति मुख्यतः सामंतवाद में आकर हुई। यद्यपि पहले भी थी किन्तु उसकी सम्पूर्णता सामंती व्यवस्था में देखी जा सकती है। आगे श्री रामबिलास शर्मा शूद्रों की स्थिति की ओर संकेत करते हुए कहते है कि ''कुल मिलाकर शुद्रों का जीवन बड़ा कठिन था। उनके अधिकार नहीं के बराबर थे, कर्त्तव्य ढेरों थे। ..... इनके लिए क्रूर दण्ड की व्यवस्था थी। इस पर तुर्रा यह कि यदि कोई ब्राह्मण शुद्र को मारे तो उसे वही प्रायश्चित करना पड़ेगा जो एक बिल्ली, मेंढ़क, कुत्ता या कौआ मार डालने पर करना होगा।[16] यहाँ शूद्रों की वास्तविक अवदशा का प्रमाण मिलता है। इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि सामंतवाद में वर्ग–भेद की विषमता बहुत अधिक विकृत रूप में व्याप्त थी जिसने समाज में विषमता को जन्म दिया और यह विषमता अपने पूर्ण चरमोत्कर्ष पर मध्यकाल में पहुंची।

यहां जातिगत भेद–भाव के कारण विषमता, वर्ग–विरोध और शोषण–उत्पीड़न मध्यकालीन सामंतवाद की प्रमुख सीमा रही है। इसी वर्ग–भेद, शोषण, उत्पीड़न के विरोध में संतों ने अपनी क्रांतिकारी आवाज उठाई। सामंतवाद में ध्र्म का सामंतीकरण देखा जा सकता है। इतना जो निर्विवाद सत्य है ही कि सामंतवाद की आधरशिला धर्मिक अनुदान परम्परा नहीं हैं। यहां यह कहना अनुचित न होगा कि ''हिन्दू धर्म अपनी सामंती युग के ध्र्म के रूप में विकसित हुआ। हिन्दू धर्म सच्चे अर्थों में सामतंवाद की जरूरतों को उसी प्रकार अभिव्यक्त करता है जिस प्रकार प्राचीन ब्राह्मणवाद उदीयमान दास प्रथा की आवश्यकताओं को अभिव्यक्त करता है।[17] वस्तुस्थिति यह थी कि हिन्दू धर्म मूलतः मध्ययुगीन हिन्दू धर्म, सामंतवाद को सुरक्षित रखने में अपनी एक विशेष भूमिका निभाता है। धर्म का सामंतीकरण इस युग में हुआ। ''ब्राह्मणों ने वेदों और पवित्रा ग्रंथों को, जिनके वे संरक्षक माने जाते थे, सामंती उच्च वर्गों के अधिकारों और सुविधओं को सुरक्षित रखने के लिए इस्तेमाल किया।''[18]

यह कहना अतिश्योक्ति न होगी कि सामंती व्यवस्था में धर्म ही उसे स्थिर रखने का आधर स्तंभ था, धर्म ही वह कचव था जो सामंतवाद को बचा सका, उसकी रक्षा कर सका। जनता की सामंतो के शोषण को चुपचाप सहन करते रहने की शिक्षा मध्ययुगीन सामंती धर्म ने ही दी और यही कारण है कि मध्ययुगीन संतों में मुख्यतः कबीर ने सबसे पहले धर्म पर ही प्रहार किया उन्होंने इसे सामंती व्यवस्था को तोड़ने के लिए उसके आधर स्तम्भ धर्म पर कड़ा प्रहार किया वे सीधे सामंतवाद से टक्कर कम लेते है बल्कि जिसकी आड़ में सामंतवाद पला, बढ़ा उसी पर करारी चोट करते हैं।

जब धर्म ही सामतंवाद का सरंक्षक है तो उसके विधि–विधन भी सामंतवाद को पोषित करने में सहायक रहे होंगे। जिसने विभिन्न धर्मिक कुप्रथाओं को जन्म दिया। वस्तुतः ये धर्मिक विकृतियां तत्कालीन सामंती व्यवस्था को स्थिर कर उसे सुरक्षित बनाने में अपनी महत्वपूर्ण

भूमिका निभाती हैं। सामंतवाद में अनेक धर्मिक कुप्रथाओं का जन्म हुआ। धर्म के नाम पर अनेक अंध विश्वासों एवं आडम्बरों ने जन्म लिया। धर्म के क्षेत्रा में ऐकेश्वरवाद के साथ बहु–देवतावाद भी प्रचलित था। सामंती जागीरदारों तथा जमींदारों के उदय के साथ ही जो नाममात्रा के लिए राजा के प्रति निष्ठावान होते थे, जितने ही देवी देवताओं की पूजा शुरू हो गयी। अनगणित देवी देवताओं के साथ हिन्दू धर्म ने एक स्थानीय अलगाववाद को प्रोत्साहित किया और ग्राम समुदाय के आधर पर सामंतवाद के अंतर्गत विभाजनों को सुदृढ़ करने में सहायता की।[19] इससे यह विदित होता है कि किस प्रकार सामंतवाद ने अपने पैर जमाने के लिए धर्मिक कुप्रथाओं का संरक्षण प्राप्त किया। स्थानीय शासक दूरस्थ क्षेत्राों से कटकर एक ही क्षेत्रा तक सीमित होकर रह गए जिसका प्रमाण प्रो. रामशरण शर्मा ने इस प्रकार दिया है – ''ब्राह्मण और उनके संरक्षक दूरस्थ प्रदेशों से कटकर अपने अपने क्षेत्राों से एकीभूत हो गये। इससे स्थानीय संस्कृतियों का जन्म हुआ। पफलतः देश में क्षेत्राीयतावाद का उदय हुआ। और लोग अपने अपने क्षेत्रा को ही अपना राष्ट्र मानने लगे।''[20] पूर्वोक्त मत से यह स्पष्ट हो जाता है कि सामंतवाद में धर्म की आड़ लेकर अनेक ब्राह्मणों एवं पुरोहित सामंतों ने अपने–अपने अलग क्षेत्राों को ही अपना राष्ट्र मान लिया था जिसने क्षेत्राीयता वाद को जन्म दिया। जहां एक ओर इन सामंतों एवं पुरोहितों ने अलगाववाद को बढ़ावा दिया, वहीं दूसरी ओर अपनी सत्ता को स्थिर और चारों तरपफ से सुरक्षित करने के लिए जनता को आडम्बरों एवं झूठे पाखण्डों में पफंसाये रखा।

पफलस्वरूप भूत–प्रेत और व्यभिचार आदि अनेक कुप्रथाओं का बोलबाला हो गया। सामंतों में आपसी प्रतिद्वन्द्विता बहुत अध्कि रहती थी। जिसके परिणामस्वरूप जादू टोने एवं अन्य तात्रिांक क्रियाकलाप किये जाने लगे। धर्मरक्षकों ने शास्त्राों का प्रयोग भी अपनी स्वार्थ सिध्दि के लिए किया। सती प्रथा, बाल विवाह, राजा को ईश्वर स्वरूप समझना, पुरोहितों की एवं राजा की आज्ञा का उल्लंघन आदि को शास्त्रा सम्मत बताकर धर्म के साथ उनका नाता जोड़ दिया गया। जिनका उल्लंघन एवं अवहेलना करने पर धर्मभ्रष्ट होने का भय रहता था अज्ञानी प्रजा इन कुचक्रों में पफंसकर उनकी आज्ञा मानने पर मजबूर थी।

अपनी नींव मजबूत करने के लिए सामंतवाद में हर क्षेत्रा, हर समुदाय और हर जाति के अपने देवता और अपने रीति रिवाज बन गए। उफंची जातियों के देवता दूसरी जातियों के देवी–देवताओं न कि बड़े, बल्कि उनसे कहीं अधिक श्रेष्ठ माने जाते थे। सामंतवाद में हिन्दू धर्म का ऐसा कोई केन्द्र नहीं था जो देश के विभिन्न भागों में बसे हिन्दू धर्म के लाखों अनुयायियों के दैनिक जीवन और दैनिक क्रियाकलापों को निर्देशित और नियंत्रित कर सके। जनता का दैनिक जीवन किसी सुप्रतिष्ठित देवालय द्वारा प्रतिपादित केन्द्रीय नियमों से नियंत्रित नहीं था, वरन् उन परम्पराओं, रस्मों और रीतिरिवाजों से निर्देशित था जो सामंतवाद को मजबूत बनाने में उसकी मदद कर सके।[21]

आगे बढ़ते हुए श्री के. दामोदरन कहते है कि भारतीय सामंतवाद ने तत्कालीन धर्मिक विश्वासों और दार्शनिक प्रणालियों को नया रूप और नया रंग प्रदान किया। सामंती ब्राह्मण पुरोहितों ने विविध विचारों और मान्यताओं को एक ही सामाजिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए एकीकृत करने की चेष्टा की। इस प्रयत्न में उन्होंने प्राचीन ब्राह्मणवादी सिध्दान्तों और कर्मकाण्डों, मूर्तिपूजा के नव बौ(रीति–रिवाजों और सर्वात्मवाद तथा गणचिह्नवाद की आर्यपूर्व कबीली परम्पराओं को बड़ी चतुराई से एक ही सूत्रा में पिरो दिया।''[22] इस प्रकार धर्म शक्तिशाली लोगों के हाथों में आ गया और उसने अपनी स्वार्थ सिध्दि के लिए विभिन्न धर्मिक परम्पराओं एव रीति–रिवाजों को जन्म दिया जिससे निम्नवर्ग और नारी वर्ग के शोषण के विभिन्न क्षेत्रा प्रस्तुत किये। धर्म के नाम पर छोटी–छोटी सुकुमारियों को पति पत्नी के सम्बन्धें को समाप्त होने के पूर्व ही, पति की मृत्यु होने पर सतीत्व की दुहाई देकर, चिरनिद्रा में सुला दिया जाता था।'[23]

दूसरी ओर ये धर्म के रक्षक और सत्ता के भेद में मस्त उच्च वर्ग नारी को केवल भोग की वस्तु समझता था। अन्य वस्तुओं के समान नारी भी उसके लिए भोग्य वस्तु थी जिसे वह अपना अधिकार समझता था। अतः सामंतवाद ने ऐसी अनेक कुप्रथाओं को जन्म दिया जो स्वस्थ समाज के लिए कलंक थी। यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन 'हिन्दू धर्म सामंतवाद की जरूरतों को उसी प्रकार अभिव्यक्त करता था, जिस प्रकार प्राचीन ब्राह्मणवाद उदीयमान दासप्रथा की आवश्यकताओं को अभिव्यक्त करता था।'[24] दूसरे शब्दों में कहे तो, तत्कालीन हिन्दू धर्म सामंतवाद की आवश्यकताओं का पूरक था। उसके आचरण एवं मान्यताओं में वृक्षों, पशुओं, भूत–प्रेतों, प्रेतात्माओं और सवर्णो आदि की पूजा तथा अनेक कर्मकाण्ड हिन्दू धर्म के हथकण्डे थे। जो भोली–भाली जनता को ठगने और सामंतों के कष्टों आदि को उनकी नियति बताकर सामंतवाद को मजबूत कर रहे थे।

इन्हीं विश्वासों के कर्मपफल के सिध्दान्त ने गहरी जड़े जमा ली। ''सामंतवाद के अंतर्गत कर्म और कर्मपफल के विश्वास ने और भी गहरी जड़ें जमा ली।''[25] जिसके परिणामस्वरूप जो कुछ हो रहा है वह शोषित जनता के कर्मों का पफल है यह विश्वास दिलाया गया। निःसंदेह इस कर्म पफल के भोग की मान्यता ने भारतीय समाज में निम्न वर्गों के शोषण को औचित्य ही नहीं प्रदान किया, विद्रोही चेतना को हमेशा कुंठित किया और भाग्यवाद को प्रश्रय दिया।

वस्तुतः धर्म एवं उसकी मान्यताएं और विश्वासों ने शोषित जनता को एक ऐसी अपफीम की गोली दी जिसकी निद्रा में वे सोये रहे। इस दृष्टि से सामंतवाद की कमजोरियाँ यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में इतनी दिखाई नहीं पड़ती जितनी अप्रत्यक्ष रूप में धर्म की आड़ में सामंतवाद पफला पफूला तभी तो मध्यकालीन संतों ने सीधे सामंतवाद पर प्रहार न करते हुए इन धर्मिक कुप्रथाओं पर प्रहार किया। उन्हें तोड़ा है और जनता को धर्मिक अपफीम की निद्रा से जगाने का पुण्य कार्य करने का प्रयास किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यद्यपि सामंतवाद अपने प्रारम्भिक रूप में आदर्शवादी एवं कुछ गुणों से युक्त रहा। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि सामंतवादी प्रथा ने प्रारम्भ में प्रगतिशील भूमिका अदा की जिसमें उत्पादन शक्तियों में बड़े पैमाने पर विस्तार के साथ–साथ संस्कृति, कला गणित, स्थापत्य कला, साहित्य, ज्योतिष आदि के क्षेत्रा में अभूतपूर्व प्रगति की। लेकिन यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि सामंतवाद का यह आदर्शवादी रूप धीरे–धीरे अपनी वास्तविक स्थिति में मध्यकाल में आने लगा और उसने अपने को मजबूत बनाने के लिए सत्ता का दुरूप्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया।

सामंतवाद में कुछ शक्तियों की अपेक्षा उसमें कमजोरियां और बुराईयां अध्कि आ चुकी थी इसमें सत्ता के विकेन्द्रीकरण के परिणामस्वरूप क्षेत्राीयतावाद एवं स्थानीय सामंतों की तानाशाही बढ़ने लगीं। जहां जन–साधरण को एक राजा के अधीन रहकर कर्तव्य निर्वाह करना पड़ता था वहां स्थानीय सरदारों और सामंतों के अधीन रहकर उनकी और अध्कि दुर्दशा हुई। किसानों की स्थिति तो इस समय इतनी दयनीय थी कि उन्हें दासों का सा जीवन बिताना पड़ा। दिन–रात जमीन पर कार्य करने के पश्चात् भी उन्हें भरपेट भोजन नहीं मिल पाता था

उस पर तरह–तरह की प्रताड़नाएं। अपने स्वामी के यहां बेगार करना और सबसे बड़ी बात तो यही थी कि वे जमीन छोड़कर कहीं जा भी नहीं सकते थे। इससे इनकी स्थिति दासों से भी बदतर हो गयी थी। वही स्थिति शिल्पियों, श्रमिकों आदि की भी थी। बेगार प्रथा के साथ–साथ उनपर करों का बोझ इतना डाल दिया गया कि यदि सारे कर वसूल किये जाये तो उनके पास जीवन यापन के लिए कुछ बचता होगा इसमें संदेह है।

किसानों एवं जनसाधरण का तरह–तरह से शोषण किया जाता था आर्थिक क्षेत्रा में उनकी स्थिति निराशाजनक थी। धर्मिक क्षेत्रा में तो सामंतवाद अपने पूर्ण रूप से व्याप्त था ही क्यों पण्डित और पुरोहित ही सारा धर्म तंत्रा चलाते थे और अपने निजी अर्थात् सामंती शक्तियों को मजबूत करने के लिए तरह–तरह के नियम बनाते थे। दूसरे अर्थों में मध्यकाल में, ध्र्म का पूरी तरह से सामंतीकरण हो चुका था। धर्मशास्त्राों एवं पण्डितों आदि धर्म गुरू केवल सामंतों की सत्ता के रखवाले होकर रह गए थे। जिसके परिणामस्वरूप अनेक धर्मिक मत–मतांतरों एवं धर्मिक कुप्रथाओं ने जन्म लिया और जन–साधरण को इनकी भूल भुलैया में भ्रमाए रखा। उनमें यह विश्वास जगाया कि जो हो रहा है वह उनकी नियति है, भाग्य है, उनका कर्मपफल है। इन समस्त मान्यताओं ने एक ओर शोषक वर्ग को शोषण करने के नये क्षेत्रा प्रस्तुत किये, तो दूसरी ओर शोषितों को उनका भाग्या बताकर उनकी भावना को कुंठित किया। इन्हीं धर्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रा में विकृतियों के परिणामस्वरूप भक्ति आन्दोलन उठा जिसमें महत्वपूर्ण भूमिका संत कबीर ने निभाई। उन्होंने सामंतवाद की नींव हिलाने और उसे पूर्णतः विध्वन्स करने के लिए तत्कालीन धर्मिक व्यवस्था, जो सामंतवाद के आधर स्तंभ थे, उन पर जमकर प्रहार किया। सामंतवाद में कबीर की भूमिका मूलतः ध्र्म सुधर या समाज सुधर की नहीं रही वरन् इनकी आड़ में पोषित हुए सामंतवाद पर प्रहार करने की रही थी।

मध्यकालीन सामंतवाद के पूर्वोक्ता विवेचन के आधर पर कुछ ऐसी प्रवृत्तियां उभर कर आती है जो मध्यकालीन सामंतवाद को और अध्कि सुस्पष्ट करती है। वस्तुतः मुसलमानों की संस्कृति अरब–ईरानी संस्कृति का मिश्रण थी। अरबों ने ईरान और मिस्र की प्राचीन सभ्यता तथा पुरानी रोम सभ्यता को पचाया। इनकी परम्परा और रिवाजों को बदलते परिवेश के अनुकूल स्वीकार किया। अपनी उत्पत्ति के करीब छः सौ वर्षों बाद भारत में प्रवेश करने वाले इस्लाम का स्वरूप बदल चुका था और इसका सामान्य स्वरूप सामतंवादी हो चुका था। सामंतीय संस्कृति का आधरभूत तत्व 'धन' के अभाव का प्रश्न ही नहीं था। साथ ही जब ''हिन्दू शासकों ने मुसलमान राजाओं से संधि और संबंध स्थापित कर लिये, तब इस्लाम को भी सामंतवाद, शोषण और असमानता की भावना ने आ जकड़ा।[26] इस प्रकार एक वर्ग विशेष के पास सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण होने से भोगवादी प्रवृत्ति बढ़ती गयी। मध्ययुग में आकर ये सामंतवर्ग की भोगवादी प्रवृत्तियां अपने चरमोत्कर्ष पर थी।

इस काल में भोग एवं सांस्कृतिक जीवन दर्शन के विकसित होने का एक और कारण था वह था कि सामंती वर्ग अपनी सम्पत्ति का उपयोग अपने जीवन काल में ही कर लेना चाहता था, क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि उनकी सारी सम्पत्ति उनके बाद राजकोष में जमा हो जायेगी। इसके परिणामस्वरूप शक्तिशाली वर्ग अपव्ययी, वैभवपूर्ण विलासमय जीवन व्यतीत करने लगा। यह प्रवृत्ति इस युग के सामंती वर्ग में इतनी प्रचुरता से बढ़ चुकी थी कि पूर्व सामंतवर्ग की भोगवादी प्रवृत्तियां इस युग के सामने आदर्श सी जान पड़ती है।

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सामंतीय संस्कृति (प्रवृत्ति) एक भोगपरक संस्कृति थी। मुगलों के प्रवेश ने इस देश में ईरानी सभ्यता, दरबारी रागरंग, सुरा के छलकते जामों, हरमों में पलित कामिनियों का मादक सौन्दर्य बिखरा दिया। छुटपुट युध्द और विद्रोह सेनापतियों तक ही कायम रहे, वे भी बहुत अंतर से। अतः वीरत्व और त्याग कर स्थान धीरे–धीरे भोग ने आच्छदित कर लिया। मुगल बादशाहों और शौकीना, रंगीन मिजाजी देशी राजा–महारात तथा रईसों, जमींदारों तक में रेशमी कीड़ों की तरह पफैलने वाली और इस युग का सम्पूर्ण इतिहास विलासिता का केन्द्र बन गया।''[27]

सामंतीय प्रवृत्तियों में उनकी शान–शौकत का वर्णन करते हुए मोरलैंड ने बताया है कि 'शाही महल का एक भाग जनाना' कहलाता था जिसमें पांच हजार स्त्रियां रहती थी और उनमें से प्रत्येक के लिए अलग–अलग कमरे रहते थे। उनकी सेवा में सेवकों की पफौज लगी रहती थी तथा उनकी निगरानी में सैकड़ों रक्षक तैनात किये जाते थे। शाही शिविर में घुड़सवार सेना के अतिरिक्त तीन हजार तक नौकर होते थे। पुनः शिकार खेलने वाले लोग भी हाते थे। शाही दरबार में मनोरंजन के लिए ढेर सारे लोग रहते थे जिनमें एक हजार पहलवान भी शमिल थे।'[28] स्पष्ट है कि शाही दरबार में वैभव और ऐश्वर्य अठखेलियां करता था। यही राग रंग सामंतों के महलों में भी चलता था। वास्तव में, वह विलासिता का मूर्तिमान रूप था।

सम्पूर्ण सामाजिक वातावरण में एक प्रकार का वासनात्मक और प्रदर्शनात्मक उबाल सा आ गया था। यद्यपि राजपूतकालीन अर्थात् पूर्ण मध्यकालीन सामंतवाद में भी ये तत्व थे, किन्तु उसमें कुछ तत्व आदर्शात्मक थे। जैसे वचन–रक्षा, प्रेम–तत्व, त्याग और न्याय का आदर्श युध्द–प्रियता तथा धर्म–रक्षा आदि। इस काल तक इन तत्वों पर विलासिता की मादकता व्याप्त हो चुकी थी। जीवन के सारे सिध्दान्त भोग बिन्दु पर केन्द्रित हो गए थे। सारा सामंती वर्ग ऐयाशी की मदहोशी में गिर उठ रहा था। जहांगीर स्वयं ही भोग–विलास में डूबा रहने वाला सुरापायी शासक था। अमीरों के महलों के भीतर के दृश्य इन्द्रियोत्तेजक होते थे, जिनमें प्रायः निरदेश्य समारोह हुआ करते थे, विजयनगर के अभिजात्य वर्ग के विलासी जीवन का वर्णन विदेशी यात्री पायस तथा नितिकिन ने किया है। अमीर रईसों की संध्या से अर्थरात्रि तक का काल हरम के बीच शराब के दौर के साथ संगीत और नृत्य के मध्य व्यतीत होता था। वे मद्यपान, वेश्यागमन, व्यभिचार और रागरंग में अत्यधिक आसक्त रहते थे।

इसके परिणामस्वरूप उनमें संयम, शील और सच्चरित्राता जैसे उपंचे गुणों का अभाव था। पेलसारेट जो जहांगीर के शासनकाल में आगरे में डच पफैक्टरी का अध्यक्ष था, लिखता है, कि ''मुगल सामंत कामचेष्टा, अंधधुंध विलासप्रियता, आडम्बरप्रियता, अभियान, आस्वाद लोलुपता तथा शान–सजावट का जीवन व्यतीत करते थे–उच्च सामंत वर्ग के सामान्य अवगुण उनके विशाल अंतःपुर थे, जहां असंख्य परिचारिकाएं, नर्तकिया, सुन्दरतम नारियां रहती थीं। इन्हीं पर अत्यध्कि व्यय होता था। विलासिता और अपव्यय से सामंत वर्ग अनैतिक और पतित हो चुका था।'[29]

पूर्वोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मध्यकालीन सामंतवाद (14वी, 15वीं, 16वीं) शताब्दियों में अपने पूर्ण उत्कर्ष पर था यद्यपि इससे पूर्व भी सामंतवाद का यही स्वरूप था किन्तु अपनी कुछ विशेष प्रवृत्तियां (भोगवादी) प्रवृत्तियों ने मध्ययुगीन सामंतवाद को विकार के चरम उत्कर्ष तक पहुंचा दिया। उसमें सामाजिक, आर्थिक, धर्मिक सभी क्षेत्राों में विकृतियां उत्पन्न हो चुकी थी। इन्हीं विकारों को दूर

करने के लिए कबीर जैसे क्रांतिकारी कवियों ने इस सामंती मूल्यों का डटकर विरोध किया।

सामंती व्यवस्था समस्त यूरोप में सर्वत्रा विद्यमान थी, किन्तु उनमें कुछ स्वरूपगत भिन्नता थी। यही कारण है कि सामंतवाद के स्वरूप निर्धरण में भी विद्वानो के मतों में अंतर आ जाता है। प्रायः यूरोपीय विद्वानों ने सामंतवाद को भारी–भरकम शब्द मानते हुए इसे व्यापक धरणाओं का बोधक माना हैं। मार्क ब्लाक के शब्दों में, ''यूरोपीय सामंतवाद की आधरभूत विशेषताएं हैं – अधिन कृषक वर्ग को तनख्वाह देना असंभव था। अतः उसके स्थान पर बड़े पैमाने पर जागीर (Fief) दिए जाने की प्रथा, विशिष्ट योध्द वर्ग की प्रभुसत्ता, आज्ञा पालन तथा संरक्षण रूपी बंधन, जो इंसान को इंसान से बांधते हैं और योध्दा–वर्ग में जो एक खास तरह की ताबेदारी का रूप ग्रहण कर लेते हैं, सत्ता का विखंडन जो निश्चय ही अव्यवस्था का मार्ग प्रशस्त करता है, और इन सभी के बीच परिवार एवं राज्य आदि अन्य संगठनों का बचे रहना।''[30]

पूर्वोक्त विवरण में कृषक वर्ग से उसके अधिशेष उत्पादन का अंश जबरदस्ती लिए जाने के दबाव पर विशेष बल दिया गया है। इसमें यह संकेत है कि इस काल के दौरान मुद्रा का चलन अपेक्षाकृत कम था। साथ ही इस विवरण में योध्दावर्ग और युध्दों की महत्ता तथा समाज में पदानुक्रम कायम रखने की आवश्यकता पर भी दिया गया है। इसी तथ्य की पुष्टि एडवर्ड मकनल बर्न्स की परिभाषा से भी होती है यद्यपि थोड़े–बहुत अंतर के बाद लगभग मूल बात एक ही है।

उनके मतानुसार यह एक ऐसी पध्दति है जिसमें दो वर्ग हैं– स्वामी और गुलाम वर्ग। इन दोनों के विभाजन का आधर है कि स्वामी वर्ग गुलाम वर्ग को कितना अधिकार देता है। साथ ही वह परम्परा वंशानुक्रम द्वारा निर्धरित होती है।[31] बर्न्स की परिभाषा में भी दो वर्गों (स्वामी और गुलाम वर्ग) को वंशानुक्रम पर आधरित मानते हुए अप्रत्यक्ष रूप में दास प्रथा की ओर संकेत किया गया है। स्टेयर तथा कालबोर्न द्वारा एक कांप्रफेंस में व्यक्त विचारों के अनुसार 'सामंतवाद' आर्थिक और सामाजिक पध्दति न होकर, सरकार का वह स्वरूप है जिसमें आवश्यक सम्बन्ध न तो शासक और प्रजा के मध्य होते है, न राज्य और नागरिकों के मध्य, बल्कि प्रभु और उसके अधीनस्थ के मध्य होते हैं।[32] प्रस्तुत परिभाषा में राजा और उसके अधिनस्थ सामंत के पारस्परिक सम्बन्धें पर बल दिया गया है, किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि इन सम्बन्धें का आधर क्या था।

डॉ. रामशरण शर्मा के अनुसार ''मध्यकालीन यूरोप में सामंतवाद स्वतंत्रा आत्मनिर्भर आर्थिक इकाइयों के उदय के कारण पनपा।[33] यद्यपि मध्यकालीन यूरोप में सर्वत्रा सामंतवादी व्यवस्था दी, किन्तु उनके स्वरूप में थोड़ा बहुत अंतर था। यही कारण है कि सभी देशों एवं प्रदेशों में व्याप्त सामंतवाद में स्वरूपगत भिन्नता है। यूरोपीय विद्वानों ने सामंतवाद की परिभाषा यह कह कर की है कि ''इस आर्थिक व्यवस्था के अंतर्गत उत्पादन में कृषक दासता प्रधन भूमिका अदा करती है। इस दासता में मजदूरों को बिना पारिश्रमिक काम के लिए प्रेरित करना परिलक्षित है। किसान खुद अपनी और भूस्वामी की जमीन पर भी काम करेगा।''[34]

संदर्भ

1हिन्दी उपन्यासों में सामंतवाद, डॉ कमला गुप्ता, पृ. 55
2मध्यकालीन भारत, भाग – 2, इरपफान हबीब पृ. 55
3मध्यकालीन भारत, भाग – 2, इरपफान हबीब पृ. 55
4भारत का इतिहास, रोमिला थापर, पृ. 222
5हिन्दी उपन्यासों में सामंतवाद, डॉ. कमला गुप्ता, पृ. 55
6भारत का इतिहास, रोमिला थापर, पृ. 222
7भारतीय सामंतवाद, डॉ. रामशरण शर्मा, पृ. 274
8भारतीय सामंतवाद, डॉ. रामशरण शर्मा, पृ. 273
9कामसूत्रा, वात्स्यायन, पृ. 5/5/5
10हिन्दी उपन्यासों में सामंतवाद, डॉ. कमला गुप्ता, पृ. 61
11हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियां, प्रो. रामशरण शर्मा, पृ. 59
12हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियां, प्रो. रामशरण शर्मा, पृ. 107
13भारतीय चिंतन परम्परा, के. दामोदरन, पृ. 217
14भारतीय चिंतन परम्परा, के. दामोदरन पृ. 218–219
15मानव सभ्यता का विकास, श्री रामविलास शर्मा पृ. 83–84
16मानव सभ्यता का विकास, श्री रामविलास शर्मा, पृ. 84
17भारतीय चिंतन परम्परा, के. दामोदरन, पृ. 215
18भारतीय चिंतन परम्परा, के. दामोदरन, पृ. 221
19भारतीय चिंतन परम्परा, के. दामोदरन, पृ. 216
20भारतीय सामंतवाद, डॉ. रामशरण शर्मा, पृ. 278
21भारतीय चिंतन परम्परा, के. दामोदरन, पृ. 216 – 217
22भारतीय चिंतन परम्परा, के. दामोदरन, पृ. 216
23हिन्दी उपन्यासों में सामंतवाद, डॉ. कमला गुप्ता, पृ. 72
24भारतीय चिंतन परम्परा, के. दामोदरन, पृ. 215
25भारतीय चिंतन परम्परा, के. दामोदरन, पृ. 219
26आधुनिकताबोध और आधुनिकीकरण, रमेश कुन्तल मेघ पृ. 47.

27बिहारी सतसई का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. श्यामसुन्दर दुबे, पृ. 37
28India at the Death of Akbar, Morland, p. 87-88
29मुगलकालीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, बी. एन. लुणिया, पृ. 938
30Fedual Society, M. Block, p. 446
31The Feudal regime was a system of overlordship and vassalage based upon the grantioy, and holding fief. In the main, a fief was befafia which had become hereditary - Western civilization thus history and their Culture, Edward Mchal Burns, p. 314
32The Idea of Fedualism, Strager and Coulbourn - Journal of Rajasthan Institute of Historical Research, Oct. Dec. 1970, pp. 10-11
33भारतीय सामंतवाद, डॉ. रामशरण शर्मा, पृ. 55
34भारतीय चिंतन परम्परा, के. दामोदरन, पृ. 208

Publish Research Article
International Level Multidisciplinary Research Journal
For All Subjects

Dear Sir/Mam,

We invite unpublished Research Paper,Summary of Research Project,Theses,Books and Book Review for publication,you will be pleased to know that our journals are

Associated and Indexed,India

- International Scientific Journal Consortium
- OPEN J-GATE

Associated and Indexed,USA

- EBSCO
- Index Copernicus
- Publication Index
- Academic Journal Database
- Contemporary Research Index
- Academic Paper Databse
- Digital Journals Database
- Current Index to Scholarly Journals
- Elite Scientific Journal Archive
- Directory Of Academic Resources
- Scholar Journal Index
- Recent Science Index
- Scientific Resources Database
- Directory Of Research Journal Indexing

Golden Research Thoughts
258/34 Raviwar Peth Solapur-413005,Maharashtra
Contact-9595359435
E-Mail-ayisrj@yahoo.in/ayisrj2011@gmail.com
Website : www.aygrt.isrj.net